झारखण्ड राज्य एवं अन्य

बनाम

कमल प्रसाद एवं अन्य

सिविल अपील संख्या 4809/2014

अप्रैल 23, 2014

[ज्ञान सुधा मिश्रा एवं वि गोपाल गौड़ा न्यायमूर्ति]

सेवा कानून-समाप्ति-बहाली - प्रत्यर्थी-कर्मचारियों को अपीलकर्ता नियोक्ता द्वारा अस्थायी आधार पर सहायक अभियंता के रूप में नियुक्त किया गया था-बाद में उन्हें उनकी सेवाओं से बर्खास्त कर दिया गया-उच्च न्यायालय ने माना कि प्रत्यर्थी राहत के हकदार थे और उन्हें अपनी सेवाओं में बहाल कर दिया - औचित्य - उमादेवी के मामले में लाभ का अधिकार-माना गया उत्तरदाताओं द्वारा प्रस्तुत रिकॉर्ड पर साक्ष्य से स्पष्ट रूप से पता चला कि वे अपने नियोक्ता की संतुष्टि के लिए अपीलार्थियों के साथ स्थायी कर्मचारियों के रूप में अपनी सेवाओं का निर्वहन कर रहे थे- याचिकाकर्ता यह साबित करने में विफल रहे कि प्रतिवादी अदालत के आदेशों के हस्तक्षेप के बिना कम से कम 10 वर्षों तक अपीलकर्ताओं को निरंतर सेवाएं प्रदान करने में विफल रहे-उमा देवी के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित सिद्धांत पूरी तरह से लागू - प्रत्यर्थी-कर्मचारियों की सेवाओं को समाप्त करने में अपीलकर्ता की कार्रवाई न केवल मनमाना थी, बल्कि विवेक को भी चौंका दिया था - उच्च न्यायालय उमा देवी के मामले में निर्धारित कानूनी

सिद्धांतों पर निर्धारित होकर अपीलार्थियों के तहत प्रत्यर्थी-कर्मचारियों को उनकी सेवाओं में बहाल करने में सही था।

भारत का संविधान, 1950-अनुच्छेद 136- दायरा के तहत हस्तक्षेप-चर्चा।

याचिकाओं को खारिज करते हुए कोर्ट ने कहा

1.1. झारखंड राज्य बनाम कमल प्रसाद प्रत्यर्थी-कर्मचारियों द्वारा प्रस्तुत अभिलेख पर साक्ष्य स्पष्ट रूप से यह दर्शाता है कि क वे 1987 से तदर्थ अभियंताओं के रूप में पदों पर सेवाएं प्रदान कर रहे हैं और अपीलार्थियों के साथ स्थायी कर्मचारियों के रूप में अपनी सेवाओं का निर्वहन कर रहे हैं। इसके बाद बिहार राज्य सरकार द्वारा अतिरिक्त 200 पदों का सृजन किया गया। हालांकि, उत्तरदाताओं ने उनके खिलाफ किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही के बिना तदर्थ कर्मचारियों के रूप में अपनी सेवाओं में बने रहे जो साबित करते हैं कि वे अपने नियोक्ताओं को उनकी संतुष्टि के अनुसार सेवाओं का निर्वहन कर रहे हैं।
[पैरा 20][394-डी-एफ]

1.2. अपीलार्थी यह साबित करने में विफल रहे कि प्रत्यर्थी अदालत के आदेशों के हस्तक्षेप के बिना कम से कम दस वर्षों तक अपीलार्थियों को निरंतर सेवा प्रदान करने में विफल रहे हैं, उच्च न्यायालय की खंड पीठ द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष रिकॉर्ड पर आधारित हैं, इसलिए इसे कानून में त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है। प्रासंगिक विवादास्पद मुद्दे पर तथ्य के स्पष्ट निष्कर्ष को देखते हुए कि प्रत्यर्थी-कर्मचारी लगातार 10 वर्षों से अधिक समय तक अपनी सेवा में बने रहे हैं, इसलिए उमा देवी के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनी सिद्धांत वर्तमान मामलों पर पूरी तरह से लागू होता है। वास्तव में, उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने अपने विवादित आदेश के माध्यम से प्रतिवादी कर्मचारियों को नियमित करके ओल्गा टेलिस मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित संवैधानिक सिद्धांत को बरकरार रखा है।
[पैरा 20,21][395-बी-ई]

सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य v. उमादेवी
और अन्य। **(2006) 4 धारा 1:2006 (3) एससीआर 953- लागू।**

ओल्गा टेलिस और अन्य v. बॉम्बे नगर
निगम और अन्य। **(1985) 3 एस.सी.सी. 545:1985 (2)**
पूरक। एससीआर 51-अनुसरण किया गया।
राम स्वरथ प्रसाद बनाम झारखंड राज्य और अन्य।
2002 (1) जे सी आर 106; कर्नाटक राज्य और अन्य v
एम.एल केसरी और अन्य। **(2010) 9 एससीसी 247:2010 (9)**
एससीआर 543; बिहार राज्य बेरोजगार
सिविल इंजीनियर एसोसिएशन और अन्य v. बिहार राज्य और
अन्य **(1996) 8 एस. सी. सी. 615:1996 (1) पूरक**
एस सी आर 94; U.P. राज्य विद्युत बोर्ड बनाम पूरन चंद्र
पांडे और अन्य। **(2007) 11 एससीसी 92:2007 (10) एससीआर**
920 और अमृत लाल बेरी बनाम केंद्रीय
उत्पाद शुल्क के कलेक्टर, नई दिल्ली और अन्य **(1975) 4 एस. सी. सी.**
714: 1975 (2) एस. सी. आर. 960 - निर्दिष्ट।

लेटर पेटेंट अपीलों के लंबित रहने के दौरान अपने पदों पर निरंतर सेवा प्रदान करने वाले प्रत्यर्थी-कर्मचारियों की सेवाओं को समाप्त करने में अपीलार्थियों की कार्रवाई को उच्च न्यायालय द्वारा यह महसूस करने के बाद रद्द कर दिया गया था कि कार्रवाई न केवल मनमाना है, बल्कि इसकी अंतरात्मा को झटका देता है और इसलिए इसने अपनी विवेकाधीन शक्ति का उचित प्रयोग किया है और प्रत्यर्थी-कर्मचारियों को राहत प्रदान की है जो इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की मांग नहीं करते हैं। उच्च न्यायालय ने उमा देवी के मामले में संविधान पीठ के फैसले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनी सिद्धांतों पर भरोसा करके अपीलार्थियों के तहत प्रतिवादी-कर्मचारियों को उनकी सेवाओं में बहाल करने में सही था।
[पैरा 23,24) एफ [400-डी-एच]

जमशेद होरमुसजी वाडिया बनाम न्यासी मंडल, पोर्ट ऑफ मुंबई और अन्र।
(2004) 3 एससीसी 214:2004 (1) एससीआर 483 और मथाई @जॉबी बनाम
जॉर्ज एंड एनर।
(2010) 4 एससीसी 358:2010 (3) एससीआर 533-पर निर्भर|

केस कानून संदर्भः

2002 (1) J.C.R.106 पैरा 8 को संदर्भित।
2006 (3) एस. सी. आर. 953 लागू पैरा 8
2010 (9) एस. सी. आर. 543 पैरा 9
1996 (1) अनुपूरक। एस. सी. आर. 94 पैरा 13
2007 (10) एस. सी. आर. 920 पैरा 15
1975 को निर्दिष्ट (2) एस. सी. आर. 960 पैरा 15
1985 (2) अनुपूरक। एस. सी. आर. 51 पैरा 16
2004 (1) एस. सी. आर. 483 पैरा 23
2010 (3) एस. सी. आर. 533 पैरा 23 पर निर्भर

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार सिविल अपील सं 2014 का 4809;

L.P.A नं. 2011 का 256 में 8-11-2011 के निर्णय और आदेश से झारखंड उच्च न्यायालय,रांची द्वारा पारित किया गया।

साथ में

सिविल अपील संख्या 2014 के
4837,4810,4811,4812,4813,4814,4815,4816,4817,4818,4819,4820,4821,4822,4823,4824,4825,4826,4827,4828,4829,4830,4831,4832,4833,4834,4835 और 4836|

पी पी राव, वरिष्ठ अधिवक्ता, तपेश कुमार सिंह, मोहम्मद वकास, कुमार अनुराग सिंह, अक्षत कुलश्रेष्ठ, स्वर्णेंदु चटर्जी, सूरज भादुड़ी, कृष्णानंद पांडे, जायेश गौरव अपीलार्थियों की ओर से अधिवक्ता|

जे पी कामा वरिष्ठ अधिवक्ता , अनुकुल राय, निकिता राज, मोहित कुमार जी शाह, कृष्णा मुरारी, प्रेम प्रकाश, सत्य मित्रा, अभिषेक विक्रम (मेसर्स अनुराधा एंड एसोसिएट्स के लिए) अखिलेश कुमार पांडे, सुधांशु सरन, श्रीमती शालिनी चंद्र, श्रीमतीः स्वाति चंद्र, विभांकर मिश्रा, वीरेंद्र कुमार, अमित किशोर सिन्हा, सुनील कुमार वर्मा, अंबर कमरुद्दीन, गौरांग कांत, सव्यसाची के. सहाय उत्तरदाताओं के लिए अधिवक्ता
न्यायालय का निर्णय दिया गया था

न्यायमूर्ति वी. गोपाल गौड़ा,

1 सभी विशेष अनुमति याचिकाओं में अनुमति प्रदत्त की गई।

2. ये सिविल अपीलें अपीलकर्ता- झारखंड राज्य द्वारा दायर की गई हैं, जिसमें झारखंड उच्च न्यायालय द्वारा 2011 के लेटर पेटेंट अपील संख्या 256 और संबंधित मामलों में पारित निर्णय और आदेश दिनांकित 08.11.2011 की वैधता पर सवाल उठाया गया है। जिसने विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा पारित दिनांकित 25.07.2011 के फैसले को रद्द करते हुए प्रत्यर्थी-रिट याचिकाकर्ताओं की अपील की अनुमति दी, जिसके तहत प्रत्यर्थी- कर्मचारियों की रिट याचिकाएं खारिज कर दी गईं और जारी कारण बताओ नोटिस और प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की सेवाओं की बर्खास्तगी के आदेशों को रद्द करने के बाद 2011 के अंतर्वर्ती आवेदन संख्या 3223 को अनुमति दी गई थी। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने कानून के कुछ महत्वपूर्ण विवाद्यकों की विरचना करके यह माना है कि यहां प्रत्यर्थीगण सभी परिणामी लाभों के हकदार होंगे। अपीलकर्तागण ने आक्षेपित निर्णय और आदेशों से व्यथित होकर इसके समर्थन में विभिन्न तथ्यों और कानूनी आधारों का आग्रह करते हुए ये सिविल अपीलें दायर की हैं और सिविल अपील जो स्वीकृत करते हुए आक्षेपित निर्णय और आदेशों को रद्द करने की प्रार्थना किया है ।

3. आक्षेपित निर्णय में उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों और कारणों की शुद्धता की जांच करने की दृष्टि

से पक्षों की ओर से उठाए गए प्रतिद्वंद्वी कानूनी तर्कों की सराहना करने के उद्देश्य से कुछ प्रासंगिक तथ्य बताए गए हैं और यह भी पता लगाने के लिए कि क्या आक्षेपित निर्णय और आदेश इन सिविल अपीलों में अपने अपीलीय अधिकारिता के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की समथित करते हैं।

4. प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण (उच्च न्यायालय के समक्ष रिट याचिकाकर्ताओं) को शुरू में वर्ष 1981 में तत्कालीन बिहार राज्य में ग्रामीण विकास विभाग में जूनियर इंजीनियरों के पदों पर नियुक्त किया गया था। जिसके संबंध में बिहार लोक सेवा आयोग (संक्षेप में "बीपीएससी") की अनुशंसा की आवश्यकता नहीं थी। प्रत्यर्थी कर्मचारियों का मामला यह है कि उन्होंने अपने नियोक्ता की संतुष्टि के लिए उपरोक्त पदों पर अपने कर्तव्यों का ईमानदारी और लगन से लगातार निर्वहन किया है। बाद में उन्हें अधिसूचना की तारीख से अस्थायी पदों के खिलाफ बीपीएससी द्वारा की गई सिफारिश के आधार पर कुछ शर्तों के साथ 1000 -50-1700 पी.आरओ-10-1820/- के वेतनमान में सहायक अभियंता के रूप में तदर्थ अस्थायी आधार पर नियुक्त किया गया था। तदर्थ आधार पर सहायक अभियंता के रूप में उनकी सेवाएं सड़क निर्माण विभाग में काम करने के लिए सौंपी गईं, जहां उन्हें निर्धारित अवधि के भीतर अपना योगदान देना था। उक्त अधिसूचना संख्या कार्य/जी/1-402/87,248/(एस)पटना दिनांकित 27.6.1987 में प्रासंगिक शर्त संख्या 2 यहां नीचे दी गई

है: -

1. XXX XXX XXX ……"

2. यह तदर्थ नियुक्ति बिहार लोक सेवा आयोग के अनुमोदन पर निर्भर होगी

3. XXX XXX XXX ……"

उनका आगे का मामला यह है कि वे जूनियर इंजीनियर के रूप में पहली नियुक्ति की तारीख से 29 साल से अधिक समय से और तदर्थ आधार पर सहायक इंजीनियर के पद पर नियुक्ति से 23 साल से अधिक समय से उक्त पदों पर काम कर रहे हैं। न तो बीपीएससी, न ही बिहार राज्य सरकार और न ही झारखंड राज्य सरकार का इन कर्मचारियों की सेवाएं खत्म करने का इरादा था। इसलिए, उन्होंने अपने पदों से अपनी सेवाएं बर्खास्त करने के लिए कदम नहीं उठाया। कर्मचारियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपना मामला प्रस्तुत किया जब उन्हें अपीलकर्ता संख्या 3 द्वारा दिनांकित 20.4.2010 को कारण बताओ नोटिस जारी किया गया।

प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण से पर्याप्त काम लेने के बाद उन्हें कारण बताओ नोटिस जारी करके परेशान किया गया है, जिसमें उनसे यह पूछा

गया है कि पदों पर उनकी नियुक्ति को अवैध/अमान्य बताते हुए उनकी सेवाएं क्यों न बर्खास्त कर दी जाएं। हालाँकि, इस तथ्य के बावजूद कि बीपीएससी द्वारा दिनांकित 2.9.1996 को जारी विज्ञापन संख्या 128/1996 द्वारा 199 पद भरे गए थे, उनकी नियुक्तियों को उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय के आदेशों द्वारा अमान्य नहीं माना गया था जो कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को प्रभावित नहीं करेगा जो अन्यथा सड़क निर्माण विभाग के महत्वपूर्ण पदों पर 23 वर्षों से अधिक समय से निरंतर सेवा में हैं, न कि ग्रामीण अभियंत्रण/ग्रामीण कार्य विभाग के। इसलिए, उनके द्वारा यह दलील दी गई कि उन्हें जारी किए गए आक्षेपित नोटिस पूर्वकल्पित निर्णय के साथ एक औपचारिकता मात्र थी और यह न केवल भेदभावपूर्ण है बल्कि कानूनी दुर्भावना, मनमानी, अनुचितता से भी ग्रस्त है और डब्ल्यूपी (एस) संख्या 1001 2010 में दिनांकित 22.3.2010 को पारित अंतरिम आदेश का पूरी तरह से उल्लंघन है, जो उच्च न्यायालय की सीमा से आगे बढ़ने के समान है।

5. उन्होंने आगे यह घोषणा करने की मांग की कि चूंकि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की सेवाएं 15.11.2000 से आकस्मिक रूप से झारखंड राज्य के क्षेत्र में आती हैं और बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 की धारा 73 के साथ सहपठित धारा 72 के अर्थ के तहत केंद्रीय सलाहकार समिति द्वारा दिनांकित 20.12.2006 के आदेश के तहत अस्थायी आवंटन किए जाने के बाद आज तक उनकी सेवाओं का

कोई अंतिम कैडर विभाजन नहीं किया गया है। यह दलील दी गई है कि अपीलकर्ता-झारखंड राज्य और उसके सहायकों के पास झारखंड राज्य की स्थापना की तारीख से पहले किसी भी नियुक्ति को लेने की कोई एकतरफा शक्ति और अधिकार क्षेत्र नहीं है। इसलिए, अपीलकर्ता-राज्य द्वारा प्रत्यर्थी कर्मचारियों को उनकी सेवाओं को अवैध घोषित करने के लिए एकतरफा जारी किए गए नोटिस न केवल अपनी शक्ति का एक आभासी प्रयोग है, बल्कि सनकी, भेदभावपूर्ण भी है। और इस प्रकार इसकी कार्रवाई भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16, 19(1)(जी) और 21 का उल्लंघन है।

6. इसके अलावा, प्रत्यर्थी कर्मचारियों द्वारा रिट याचिकाओं में उच्च न्यायालय से निर्देश मांगा गया था कि उनके साथ नियुक्त समान स्थिति वाले 120 व्यक्तियों के साथ समान व्यवहार किया जाए। जो दिनांकित 15.11.2000 से झारखंड राज्य के गठन के बाद, बिना किसी परेशानी के, सौभाग्य से उत्तराधिकारी राज्य बिहार के क्षेत्र में काम करते रहे और उनके साथ नियमितीकरण के लिए उनके दावे पर कैडर नियंत्रण राज्य बिहार द्वारा अधिसूचना संख्या 10113(एस) दिनांकित 11.09.2009 के तहत लिए गए सचेत नीतिगत निर्णय के अनुसार विचार किया गया था और इसके अनुसरण में प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण ने भी इसके लिए आवेदन किया है और जिस पर झारखंड राज्य सक्रिय रूप से विचार कर रहा है और इसके अलावा उन्होंने कारण बताओ नोटिस के अनुसरण में

अपीलकर्तागण को उनके पदों से उनकी सेवाएं बर्खास्त करने से रोकने के लिए निषेधाज्ञा रिट जारी करने की मांग की। जैसा कि उन्होंने 2010 के डब्ल्यूपी (एस) संख्या 1001 में पारित आदेश दिनांकित 22.3.2010 की आड़ में विवादित नोटिस में दर्ज पूर्व-निर्णायक और पूर्वाग्रहपूर्ण निष्कर्षों और कारणों के प्रकाश में गंभीरता से आशंका जताई थी कि उनकी सेवाएं बर्खास्त की जा सकती हैं। हालाँकि, तथ्य तो यही है वे विज्ञापन आदि की उचित प्रक्रिया का पालन करने के बाद वर्ष 1981 से जूनियर इंजीनियरों के रूप में प्रारंभिक नियुक्ति से 29 वर्षों से अधिक समय से अपीलकर्तागण को अपनी नियमित सेवा का निर्वहन कर रहे हैं (हालांकि उनके पदों को नामकरण में तदर्थ कहा जाता है) और उनकी सेवाओं को बीपीएससी की अनुमति से तत्कालीन बिहार सरकार के कैबिनेट निर्णय के अनुसार 1987 में अस्थायी आधार पर फिर से सहायक अभियंता के पद पर अपग्रेड किया गया है जिन्होंने उनकी डिग्री और अनुभव की योग्यता को मान्यता दिया था । इसलिए, पदों पर उनकी नियुक्ति पूर्ववर्ती बिहार राज्य सरकार में जूनियर इंजीनियरों के रूप में उनकी मूल नियुक्ति की शुरुआत की तारीख से कानूनी और वैध है।

7. अपीलकर्तागण ने अपने दावे के औचित्य में विभिन्न तथ्यों और कानूनी तर्कों और कारण बताओ नोटिस में दिए गए कारणों का आग्रह करते हुए उक्त रिट याचिकाओं का विरोध किया और प्रत्यर्थी-

कर्मचारीगण की प्रार्थनाओं का विरोध किया। उनके मामले को विद्वान एकल न्यायाधीश ने स्वीकार नहीं किया और परिणामस्वरूप दिनांकित 25.7.2011 के निर्णय द्वारा उनकी रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया। उक्त निर्णय और आदेशों से व्यथित होकर, उन्होंने विभिन्न आधारों का आग्रह करते हुए उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के समक्ष लेटर्स पेटेंट अपील दायर की।

8. इसकी सत्यता को अपीलकर्तागण द्वारा लेटर पेटेंट अपील संख्या 256/2011 और अन्य संबंधित एलपीए में डिवीजन बेंच के समक्ष चुनौती दी गई थी। पक्षों के विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना गया। प्रतिद्वंद्वी कानूनी तर्कों पर विचार करने और इन मामलों के प्रासंगिक तथ्यों पर ध्यान देने के बाद उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा यह माना गया कि बिहार की पूर्ववर्ती राज्य सरकार द्वारा सड़क निर्माण विभाग के ग्रामीण अभियंत्रण संगठन में 200 पद सृजित किये गये हैं। और उक्त पद विभाग द्वारा विज्ञापन क्रमांक 13 सन् 1985 में विज्ञापित किये गये हैं और उन पदों के विरुद्ध प्रत्यर्थी कर्मचारियों और अन्य समान रूप से रखे गए कर्मचारियों को बीपीएससी की अनुमति से तदर्थ आधार पर सहायक अभियंता के पदों पर चयन के बाद नियुक्त किया गया था। और वे उक्त पदों पर वैसे ही बने रहे। दिनांकित 15.11.2000 को, बिहार पुनर्गठन अधिनियम, 2000 के अधिनियम द्वारा बिहार राज्य को विभाजित करके झारखंड राज्य का निर्माण किया गया था।

प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण का मामला यह है कि 2000 के अधिनियम की धारा 72 के अनुसार, जो व्यक्ति बिहार राज्य के क्षेत्र में आने वाले पदों पर कार्यरत थे, उन्हें झारखंड राज्य के पदों पर बने रहना था। इसमें कोई विवाद नहीं है कि उक्त कर्मचारी नए राज्य के निर्माण के बाद भी झारखंड राज्य में कार्यरत रहे। इसके बाद, कमल प्रसाद और अन्य द्वारा दायर 2010 की रिट याचिका संख्या 1001 में उच्च न्यायालय द्वारा दिनांकित 22.3.2010 को एक आदेश पारित किया गया था, जो एलपीए में सलंगक-15 के रूप में रिकॉर्ड पर प्रस्तुत किया गया है। उक्त आदेश के आधार पर, झारखंड राज्य सरकार ने एकतरफा निर्णय लिया कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की नियुक्ति वैध नहीं थी और तदनुसार निर्देश दिया था कि उन्हें बिहार राज्य वापस जाना चाहिए। झारखंड राज्य की उक्त कार्रवाई को उच्च न्यायालय ने गलत पाया था. **राम स्वारथ प्रसाद बनाम झारखंड राज्य एवं अन्य** (2002(1)) JCR 106 के मामले में उच्च न्यायालय ने माना है कि उक्त शक्ति झारखंड राज्य सरकार के पास उपलब्ध नहीं थी यानी प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को बिहार राज्य वापस जाने का निर्देश देने वाला एकतरफा आदेश पारित करना, इसकी कार्रवाई बिहार पुनर्गठन अधिनियम 2000 की धारा 72 के अनुरूप नहीं है, इस पहलू को विद्वान एकल न्यायाधीश ने प्रत्यर्थी कर्मचारियों द्वारा दायर एलपीए में दिए गए अपने फैसले में भी देखा था। हालाँकि, यह देखा गया कि कानून के अनुसार झारखंड राज्य को कैडर के

अंतिम आवंटन के संबंध में कर्मचारियों को कारण बताओ नोटिस जारी करने के बाद उचित निर्णय लेने की शक्ति रखने वाले उपयुक्त प्राधिकारी स्वतंत्र हैं। झारखंड राज्य सरकार ने दिनांकित 22.3.2010 के आदेश की व्याख्या एक निर्देश के रूप में की थी और वह इन कर्मचारियों की सेवाओं को बर्खास्त करने के लिए आगे करवाई की थी। राज्य सरकार ने इन अपीलों में प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण सहित ऐसे सभी इंजीनियरों की सेवाएं बर्खास्त करने का निर्णय लिया और उन्हें नोटिस जारी किए गए और प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण द्वारा दायर अंतरिम आवेदन में इस पर रोक लगा दी गई थी और यथास्थिति आदेश दिनांकित 9.9.2010 को 2010 की रिट याचिका (एस) संख्या 2087 में सलंगक -18 के अनुसार पारित किया गया था। उक्त स्थिति को देखते हुए, राज्य सरकार ने प्रस्तुत किया कि वे प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण और समान स्थिति वाले कर्मचारियों की सेवाओं की बर्खास्तगी के आदेश को स्थगित रख रहे हैं। राज्य सरकार ने प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के अभ्यावेदन को खारिज कर दिया और दिनांकित 24.8.2011 को अलग लेकिन समान आदेशों के माध्यम से उनकी सेवाएं बर्खास्त कर दीं। बर्खास्तगी के आदेशों पर प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण द्वारा लेटर्स पेटेंट अपील में अंतरिम आवेदन दायर करके उनके खिलाफ पारित बर्खास्तगी के आदेशों की औचित्य, शुद्धता और वैधता और उनके खिलाफ झारखंड राज्य सरकार द्वारा की गई कार्रवाई पर सवाल उठाया गया था। लेटर्स पेटेंट अपील में,

उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने 13.9.2011 को एक अंतरिम आदेश पारित किया जिसमें अपीलकर्तागण को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया और प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को पदों पर काम करने की अनुमति दी गई। डिवीजन बेंच ने कर्मचारियों की ओर से प्रस्तुत तथ्यात्मक और कानूनी दलीलों को स्वीकार कर लिया कि उन्हें जूनियर इंजीनियर के पद पर वर्ष 1981 में नियुक्त किया गया था जो अवैध या अनियमित भी नहीं थे और वे योग्य व्यक्ति हैं और पद संभालने के पात्र हैं, उन्होंने अपनी सेवाएं संतोषजनक ढंग से प्रदान कीं और इसलिए, बिहार राज्य सरकार ने उन्हें सरकार के आदेश दिनांकित 27.6.1987 द्वारा सहायक अभियंता के पद पर नियुक्त किया है और दिनांकित 24.08.2011 को उनके खिलाफ बर्खास्तगी के आदेश पारित होने तक उन्हें अपनी सेवाओं में जारी रखा, वह भी उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के समक्ष लेटर्स पेटेंट अपील के लंबित रहने के दौरान। डिवीजन बेंच ने पाया कि प्रत्यर्थी कर्मचारी अदालत द्वारा पारित किसी भी अंतरिम आदेश से स्वतंत्र होकर सेवा में हैं। राज्य सरकार को जूनियर इंजीनियरों की आवश्यकता थी, इसलिए, बिहार राज्य सरकार ने पदों पर प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की सेवाओं की अनुमति दी। इसके बाद, बिहार राज्य सरकार ने उन्हें सहायक अभियंता के पदों पर नियुक्त करने का निर्णय लिया है और यह धारणा थी कि उनके नामों की सिफारिश बीपीएससी द्वारा की जाएगी। प्रत्यर्थी कर्मचारियों के मामले को

स्वीकार करने के बाद कि 1987 से 2011 तक जब सेवा बर्खास्तगी के आदेश पारित किए गए, वे सेवा में बने रहे और उनके वेतन का भुगतान वेतन वृद्धि सहित अन्य सेवा लाभों के साथ किया गया। और बिहार राज्य के गठन के समय उन्हें विधिवत रूप से झारखंड राज्य में स्थानांतरित कर दिया गया था और उन्हें नियमित नियुक्त व्यक्ति माना गया जिसके लिए झारखंड राज्य सरकार ने उनकी सेवाओं में बने रहने पर कोई आपत्ति नहीं जताई। उपरोक्त संदर्भित रिट याचिकाओं में उच्च न्यायालय द्वारा पारित दिनांकित 22.3.2010 के आदेश की व्याख्या झारखंड राज्य सरकार के अधिकारियों द्वारा प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की सेवाओं को बर्खास्त करने के लिए आगे बढ़ने के निर्देश के रूप में की गई है। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने ***सचिव, कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम उमादेवी और अन्य (2006) 4 SCC 1***) के मामले का उल्लेख करने के बाद, ने स्पष्ट रूप से माना है कि यदि किसी व्यक्ति ने 10 वर्ष या उससे अधिक समय तक सेवा की है, तो यह राज्य सरकार का कर्तव्य है कि वह पद पर नियमितीकरण के लिए उसके मामले पर विचार करे। भारत के संविधान के अनुच्छेद 309, 14, 16 पर भरोसा करते हुए उक्त निष्कर्ष पर पहुंचा गया। उमादेवी और अन्य (सुप्रा) पर भरोसा करते हुए, उच्च न्यायालय ने आगे **कर्नाटक राज्य और अन्य बनाम एमएल केसरी और अन्य (2010) 9 SCC 247** के फैसले का हवाला दिया है, जिस पर इस न्यायालय ने

विचार किया है और इस न्यायालय ने इसे स्पष्ट रूप से माना है। उमादेवी और अन्य (सुप्रा) के मामले में राज्य सरकार पर यह कर्तव्य डाला गया है कि वह अनियमित रूप से नियुक्त किए गए लोगों की सेवाओं को नियमित करने के लिए कदम उठाए जिन्होंने किसी अंतरिम आदेश के लाभ या संरक्षण के बिना 10 वर्ष से अधिक समय तक सेवा की हो। उक्त मामले में आगे, इस न्यायालय ने घोषित किया है कि यह स्पष्ट रूप से आदेश दिया गया है कि छह महीने के भीतरयानी 10.04.2006 से एकमुश्त निपटान/उपाय किया जाना चाहिए । उपरोक्त निर्णय के संदर्भ में प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील ने इस दलील के समर्थन में संविधान के अनुच्छेद 142 पर भरोसा जताया कि सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का सम्मान किया जाना चाहिए और उसके सही अर्थ और भावना से लागू किया जाना चाहिए। इसलिए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने इसे स्वीकार कर लिया और इस निष्कर्ष पर पहुंची कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के अपने पदों पर नियमितीकरण के दावे उपयुक्त मामले हैं। और वे दुर्भाग्यशाली केवल झारखण्ड राज्य के निर्माण के कारण हुए जिस पर कर्मचारियों का कोई नियंत्रण नहीं था और वे झारखण्ड राज्य के निर्माण को रोक नहीं सकते थे और केवल इसी कारण से, एक राज्य एक ही प्रक्रिया द्वारा नियुक्त कर्मचारियों के संबंध में अलग-अलग रुख नहीं अपना सकता है। राज्य सरकार संविधान के अनुच्छेद 16 के तहत गारंटीकृत

सार्वजनिक रोजगार में 30 वर्षों की निरंतर सेवा के बाद कर्मचारियों को बेरोजगार नहीं कर सकती है। जिसके परिणामस्वरूप बहुत बड़ा अन्याय होगा क्योंकि उनकी आय का स्रोत छीन लिया जाएगा और इस प्रकार कर्मचारी और उनके परिवार झारखंड राज्य सरकार की मनमानी कार्रवाई के कारण पीड़ित होंगे, जिसने एक व्यक्ति को भारत के संविधान के अनुच्छेद 19 और 21 के तहत गारंटीकृत जीवन और स्वतंत्रता से वंचित कर दिया है।

9. प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की ओर से आग्रह की गई उक्त कानूनी दलील का उच्च न्यायालय के समक्ष अपीलकर्ता-राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान महाधिवक्ता द्वारा जोरदार विरोध किया गया है जिन्होंने उपरोक्त मामले में निर्धारितअनुरूप वर्तमान मामले में तथ्य की स्थिति से अलग करने की मांग की और उन्होंने आगे तर्क दिया कि उक्त निर्णय उन मामलों पर लागू नहीं होता है, जिनके तर्क को उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने खारिज कर दिया है।

10. विद्वान महाधिवक्ता द्वारा यह तर्क दिया गया है कि लेटर्स पेटेंट अपील में उच्च न्यायालय का क्षेत्राधिकार रिट याचिकाओं के दायरे तक सीमित है। इसलिए, इसे उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा विस्तारित नहीं किया जा सकता है। उन्होंने आगे कहा कि रिट याचिकाओं में प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण ने अपनी सेवाओं के नियमितीकरण के लिए प्रार्थना नहीं की है। और इसलिए, वे लेटर्स पेटेंट अपील में किसी भी अनुतोष के हकदार नहीं हैं।

11. उपरोक्त प्रतिद्वंद्वी तर्कों के संदर्भ में, डिवीजन बेंच ने, आक्षेपित निर्णय के पैरा 21, 22 और 31 पर अपना निष्कर्ष दर्ज करके, प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के मामले को स्वीकार कर लिया है और विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय और आदेश दिनांकित 25.7.2011 को रद्द करके उनके पत्र पेटेंट अपील की अनुमति दी है।

12. पत्र पेटेंट अपीलों के लंबित रहने के दौरान, राज्य सरकार ने उनके अभ्यावेदन को खारिज कर दिया और उनमें से प्रत्येक के विरुद्ध दिनांकित 24.8.2011 के अलग-अलग लेकिन समान आदेशों के जरिए प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की सेवाएं बर्खास्त कर दीं। इसलिए, उन्होंने राज्य सरकार द्वारा पारित बर्खास्तगी के आदेशों की औचित्य और वैधता पर सवाल उठाते हुए उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के समक्ष पत्र पेटेंट अपील में अंतरिम आवेदन प्रस्तुत किया है। दिनांकित 13.9.2011 को लेटर्स पेटेंट अपील में, एक अंतरिम आदेश पारित किया गया था जिसमें झारखंड राज्य सरकार को यथास्थिति बनाए रखने का निर्देश दिया गया था, यानी प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को उसके द्वारा पदों पर काम करने की अनुमति दी गई थी। अदालत ने अंतरिम आवेदन की अनुमति देकर बर्खास्तगी के आदेश को भी रद्द कर दिया और कारण बताओ नोटिस को भी रद्द कर दिया और आगे कहा कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण परिणामी लाभ के हकदार हैं।

13. इन सिविल अपीलों में अपीलकर्तागण द्वारा निर्णय और आदेशों की शुद्धता को कानून के विभिन्न प्रश्न तैयार करके और उनके समर्थन में आधार का आग्रह करके और उसे रद्द करने की प्रार्थना करके चुनौती दी गई है। अपीलकर्तागण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील, श्री पीपी राव ने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण -तदर्थ सहायक अभियंताओं की सेवाओं की बर्खास्तगी का आदेश, ***सीए संख्या 7516-20/1996 - बिहार राज्य बेरोजगार सिविल इंजीनियर्स एसोसिएशन एवं अन्य। बनाम बिहार राज्य और अन्य (1996) 8 SCC 615*** में इस न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांकित 8.4.1996 के कार्यान्वयन का आवश्यक परिणाम है क्योंकि प्रत्यर्थी बीपीएससी द्वारा चयनित होने में असफल रहे हैं। इसलिए, उनके पास उक्त निर्णय दिनांकित 8.4.1996 के कार्यान्वयन को चुनौती देने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है, जैसा कि आईए संख्या 327/1996 में दिनांकित 23.10.1996 के बाद के आदेश द्वारा संशोधित किया गया है, जिसमें राज्य सरकार को प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की आयु में छूट देने की अनुमति दी गई है। पहले प्रस्तुति के समर्थन में, उनका तर्क है कि उन तदर्थ कर्मचारियों के मामले पर विचार करने की कट-/ तारीख, जिन्होंने विधिवत स्वीकृत पदों पर 10 साल या उससे अधिक समय तक काम किया है, लेकिन अदालत के आदेशों की आड़ में, ***उमा देवी और अन्य (सुप्रा)*** का मामला शामिल नहीं है, जिसका

फैसला 10.4.2006 को हुआ था और राज्य सरकार को तदर्थ कर्मचारियों के नियमितीकरण की प्रक्रिया शुरू करने के लिए "तारीख से छह महीने के भीतर" यानी 9.10.2006 तक का समय दिया गया है। अपीलकर्तागण की ओर से विद्वान वरिष्ठ वकील श्री पीपी राव ने आगे तर्क दिया कि उच्च न्यायालय द्वारा उन मामलों में नियमितीकरण की अनुमति दी गई थी जहां बीपीएससी की सिफारिश के बिना नियुक्तियां नहीं की जा सकती थीं और भारत के संविधान के अनुच्छेद 309 और 16 के मद्देनजर, भर्ती नियमों का उल्लंघन करते हुए प्रत्यर्थी कर्मचारियों की बात तो दूर राज्य सरकार द्वारा किसी भी पद पर कोई नियुक्ति नहीं की जा सकती थी। अत: प्रत्यर्थी कर्मचारियों की अवैध नियुक्तियों को राज्य सरकार नियमित नहीं कर सकती और उच्च न्यायालय इस संबंध में निर्देश नहीं दे सकता।

14. विद्वान वरिष्ठ वकील के अनुसार, उक्त निर्णयों के मद्देनजर, इस न्यायालय के विचारार्थ दो प्रश्न उठेंगे:-

(i) क्या प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण ने किसी भी अदालत के अंतरिम आदेश के बिना दिनांकित 10.4.2006 तक काम किया?
(ii) क्या उन्हें विधिवत स्वीकृत पदों पर नियुक्त किया गया था?

हालाँकि, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने इन दो प्रश्नों को संबोधित

करने के बजाय, यह सवाल उठाया कि क्या तदर्थ कर्मचारी जिन्होंने 10 साल से अधिक समय तक सेवा की है, उन्हें इस आधार पर नियमितीकरण से अयोग्य ठहराया जाएगा कि उन्होंने किसी अन्य नियुक्ति प्रक्रिया में भाग नहीं लिया था। अपीलकर्तागण के विद्वान वरिष्ठ वकील का यह तर्क है कि उच्च न्यायालय का बार-बार यह निष्कर्ष निकालना कि प्रत्यर्थी सहायक इंजीनियर 10 वर्षों से अधिक समय से नियोक्ता के साथ निर्बाध रूप से सेवा में बने हुए थे, तथ्यात्मक रूप से गलत बयान है। इसलिए, उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा आक्षेपित निर्णय में पैराग्राफ 23, 25 और 26 में दर्ज निष्कर्ष गलत है और इस कारण से उसे इस न्यायालय द्वारा कायम रखने की अनुमति नहीं दी जा सकती , वे उच्च न्यायालय द्वारा पारित कम से कम छह अंतरिम आदेशों का पालन करते हुए अपनी सेवा में बने रहे, जो सभी तदर्थ कर्मचारियों के नियमितीकरण के प्रश्न पर विचार करने के लिए उमा देवी (सुप्रा) में उल्लिखित कट-/ तिथि दिनांकित 10.4.2006 से पहले के थे, और इसलिए उक्त निर्णय वर्तमान मामलों पर लागू नहीं होता है। उनके अनुसार, विभिन्न रिट याचिकाओं में जिन तारीखों पर अंतरिम आदेश पारित किए गए, उनका उल्लेख यहां किया गया है:-

क्रम संख्या	**आदेश की तिथि**	**केस संख्या**	**वाद शीर्षक**	**खंड/पेज**

1.	15.12.1996	सीडब्ल्यूजेसी संख्या 9420/1996	पारस कुमार बनाम बिहार राज्य	खंड II पृष्ठ 20-21
2.	20.6.1997	सीडब्ल्यूजेसी संख्या 11761/1996	सरदार प्रदीप सिंह बनाम बिहार राज्य	खंड II पृष्ठ 22
3.	4.4.2002	सीडब्ल्यूजेसी संख्या 2606/2002	जवाहरप्रसाद भगत बनाम बिहार राज्य	खंड 1 पृष्ठ 84 और 86
4.	4.4.2002	सीडब्ल्यूजेसी संख्या 4327/ 2002	अखिलेशप्रसाद बनाम बिहार राज्य	
5.	4.4.2002	सीडब्ल्यूजेसी संख्या 365/ 2002	विजयकुमार शर्मा बनाम बिहार राज्य	
6.	8.1.2003	सीडब्ल्यूजेसी संख्या 2087/ 2010 जैसा कि वर्तमान मामले		खंड I पृष्ठ

		में यानी का रिट पिटीशन संख्या 2087/2010 नोटिस किया है		147 एंड पृष्ठ 163-164 पर

15. ऊपर तैयार किए गए दूसरे कानूनी प्रस्तुतिकरण के समर्थन में,विद्वान वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया है कि न तो **उमादेवी (सुप्रा)** के मामले का निर्णय और न ही **यूपी राज्य विद्युत बोर्ड बनाम पूरन चंद्र पांडे और अन्य** (2007) 11 SCC 92 के मामले का निर्णय प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के पक्ष में मामलों पर लागू होता है। आगे यह प्रस्तुत किया जाता है कि उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के मामलों और उमादेवी के मामले के पैरा 53 में दिए गए निर्देशों को गलती से लागू कर दिया है। चूंकि प्रत्यर्थीगण ने सुप्रा में संदर्भित रिट याचिकाओं में पारित अदालत के अंतरिम आदेशों के उदाहरण पर अपीलकर्तागण के साथ सेवा जारी रखी, जिसे अपीलकर्तागण द्वारा स्थापित किया गया है। उन्होंने **अमृत लाल बेरी बनाम कलेक्टर, केंद्रीय उत्पाद शुल्क, नई दिल्ली और अन्य** (1975) 4 SCC 714 के मामले में भी इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा जताया है। अपने कानूनी तर्क के समर्थन में कि

प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण बिहार और झारखंड की राज्य सरकारों के साथ सेवा में बने रहे, विद्वान वकील ने कहा कि समान रूप से नियुक्त कर्मचारियों ने कुछ अनुतोष के लिए उच्च न्यायालय में वाद दायर किया था और उन्हें अंतरिम आदेश प्राप्त हुए थे। इसलिए, पटना और झारखंड के उच्च न्यायालयों द्वारा पारित उक्त अंतरिम आदेश का लाभ प्रत्यर्थी कर्मचारियों तक बढ़ा दिया गया है और इसलिए उन्हें उपरोक्त मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून को लागू करके सेवाओं में जारी रखा गया है। इसलिए, इन अपीलों में प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की ओर से इस दलील को स्वीकार करते हुए डिवीजन बेंच द्वारा दर्ज किया गया निष्कर्ष कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण अंतरिम आदेशों के बिना निर्बाध रूप से सेवा में बने रहे, तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है। इसलिए, अपीलकर्तागण के विद्वान वरिष्ठ वकील का तर्क है कि उक्त निष्कर्ष न केवल गलत है बल्कि कानून में त्रुटि से भी ग्रस्त है। इसलिए, आक्षेपित निर्णय और आदेश रद्द किए जाने योग्य हैं। उन्होंने आगे तर्क दिया कि उपरोक्त विवादों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण आक्षेपित निर्णय और आदेशों में उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दी गई अनुतोष के हकदार नहीं हैं और इसलिए, उन्होंने इन सिविल अपीलों को अनुमति देकर इसे रद्द करने की प्रार्थना की है।

16. अपीलकर्तागण की ओर से विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा की गई उपरोक्त दलीलों का विद्वान वरिष्ठ वकील, श्री जेपी कामा जो कि

प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की ओर से उपस्थित हुए थे, द्वारा खंडन किया गया और आक्षेपित निर्णय में दर्ज कारणों को उचित ठहराते हुए, यह तर्क दिया कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को वर्ष 1981 में बिहार राज्य के ग्रामीण विभाग में और वर्ष 1985 में जूनियर इंजीनियर के रूप में नियुक्त किया गया था, जब वर्ष 1985 में ही निकाले गए विज्ञापन के अनुसार सहायक अभियंताओं के पदों पर नियमित नियुक्तियाँ की जानी थीं, तब प्रत्यर्थीगण द्वारा इसके लिए आवेदन किया लेकिन सफल नहीं हुए और इसलिए, उन्हें प्रतीक्षा सूची में डाल दिया गया। हालाँकि, जैसा कि अपीलकर्तागण ने तर्क दिया, वर्ष 1985 में पदों पर नियमित नियुक्तियाँ होने के बाद भी उनकी सेवाएँ बर्खास्त नहीं की गईं। उनकी सेवाएँ बर्खास्त इसलिए नहीं की गईं क्योंकि उनका काम अच्छा था और उन्हें बिहार राज्य सरकार के दिनांकित 27.6.1987 के आदेश द्वारा सहायक अभियंता के रूप में नियुक्त किया गया था और उसके बाद वे अपनी सेवा में बिना किसी रुकावट के तब तक सेवा में बने रहे जब तक कि उनके खिलाफ दिनांकित 24.8.2011 को बर्खास्तगी के आदेश पारित नहीं हो गए। आगे यह तर्क दिया गया है कि दिनांकित 15.11.2002 को अपीलकर्ता-झारखंड राज्य को बिहार राज्य से विभाजित करने के बाद भी, प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण बिना किसी ब्रेक के रोजगार में बने रहे। यह तर्क दिया गया है कि पूर्ववर्ती बिहार राज्य में ग्रामीण विकास विभाग में सहायक अभियंताओं की रिक्तियों का अस्तित्व विवाद में

नहीं है। अपीलकर्ता-राज्य द्वारा उक्त पदों में रिक्तियों के अस्तित्व से इनकार नहीं किया गया है क्योंकि 2010 तक 207 रिक्तियां थीं। इसलिए, वे सेवा में बने रहे, हालांकि उन्हें दिनांकित 27.6.1987 को राज्य सरकार के आदेश द्वारा तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था, लेकिन उनके खिलाफ बर्खास्तगी आदेश पारित होने तक वे सेवा में बने रहे। उन्हें नियमित वेतन दिया जा रहा था और उन्हें अन्य सेवा लाभ दिए गए थे, जिससे उन्हें अपीलकर्तागण द्वारा स्थायी कर्मचारी माना गया था। उन्होंने आगे तर्क दिया कि डिवीजन बेंच ने अपने फैसले में कहा है कि राज्य लोक सेवा आयोग ने केवल पदों के लिए योग्य उम्मीदवारों की उपयुक्तता की जांच की और पदों पर नियुक्ति के लिए ऐसे उपयुक्त उम्मीदवारों के नामों की सिफारिश की। मौजूदा मामले में, राज्य सरकार की स्थिति यह नहीं है कि ये लोग जो सहायक अभियंता के पद पर कार्यरत थे और अपनी सेवाएं दे रहे, ये कर्मचारी पद संभालने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नहीं हैं। आगे तर्क दिया गया कि उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के मामलों में पहली बार दिनांकित 9.9.2010 को अंतरिम स्टे दी गई थी। इसलिए, यह कहना सही नहीं है कि अपीलकर्तागण के वरिष्ठ वकील द्वारा आग्रह किए गए उच्च न्यायालयों के अंतरिम आदेशों के हस्तक्षेप के साथ वे सेवा में बने रहे और इसलिए, वे उमादेवी (सुप्रा) के मामले के फैसले के लाभ के हकदार नहीं हैं । इसके अलावा, विद्वान वरिष्ठ वकील

का तर्क है कि मामले में शामिल मुख्य प्रश्न हैं तह है कि : -

> *(1) क्या प्रत्यर्थी कर्मचारियों की सेवाओं पर राज्य सरकार द्वारा नियमितीकरण के लिए विचार किया जाना चाहिए था, भले ही पहली बार में उन्होंने लोक सेवा आयोग के माध्यम से चयन प्राप्त नहीं किया था और दूसरी बार उन्होंने चयन प्रक्रिया में भाग नहीं लिया था?*
>
> *(2) क्या वे केवल इस तथ्य के आधार पर नियमितीकरण का दावा करने के हकदार थे कि उन्होंने अपीलकर्तागण के साथ लगातार 10 वर्षों से अधिक समय तक काम किया है?*

उन्होंने आगे कहा कि उच्च न्यायालय ने उमादेवी के मामले (सुप्रा) में पैरा 53 में घोषित कानून पर विचार करते हुए और न्याय और अच्छे सचेत को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को अनुतोष प्रदान किया है , इसे कानूनन गलत या त्रुटिपूर्ण नहीं कहा जा सकता है । इसके अलावा, यह तर्क दिया गया है कि झारखंड उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने महाधिवक्ता द्वारा इस आशय की दलीलों को सही रूप से खारिज कर दिया है कि तदर्थ/अस्थायी

आधार पर नियुक्त व्यक्तियों को नियमित चयन में एक और नियुक्ति पाने का अवसर मिला और वे चयन प्रक्रिया में भाग लेने में असफल रहे, इसलिए यह अपीलकर्तागण के लिए प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की सेवा को नियमित करने से इनकार करने का आधार नहीं होगा, भले ही उन्होंने ऐसे अवसर का लाभ नहीं उठाया हो। नियोक्ता राज्य सरकार ने उनकी सेवाओं को बर्खास्त करने का विकल्प नहीं चुना, हालांकि अदालत की ओर से कोई रोक आदेश नहीं है। मौजूदा मामलों में, बिहार और झारखंड सरकार दोनों ने नियमित आधार पर पदों पर नियुक्ति पाने में विफल रहने के बाद भी सभी प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की सेवा 10 या अधिक वर्षों तक जारी रखी है। इसलिए, उमादेवी के मामले (सुप्रा) में निर्धारित सिद्धांत प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के समर्थन में मौजूद मामले में पूरी तरह से लागू होगा। अपीलकर्तागण की ओर से विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा प्रस्तुत किया गया कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को उनकी सेवा में नियमित करने से अन्य पात्र व्यक्ति रोजगार से वंचित हो जाएंगे, यह कानून की दृष्टि से पूरी तरह से अक्षम्य है क्योंकि यह न केवल भेदभाव होगा बल्कि उनकी आजीविका से भी वंचित होगा। जो कानूनन वैधानिक रूप से स्वीकार्य नहीं है। सवाल यह है कि क्या अपीलकर्ता 10 से 30 साल से अधिक सेवा कर चुके मौजूदा कर्मचारियों की सेवाएं बर्खास्त कर सकते हैं, जिससे पात्र लोगों के साथ अन्याय होगा। इसलिए, किसी भी स्थिति में, यह संदेहास्पद है कि क्या

नियोक्ता, विशेष रूप से राज्य, कर्मचारियों को रोजगार से वंचित करने के लिए ऐसी याचिका उठा सकता है और क्या कानून की व्याख्या इस तरह से की जा सकती है कि गलत काम करने वालों को सभी लाभ मिलें। बिहार राज्य सरकार द्वारा बड़ी संख्या में इंजीनियरों को सोच-समझकर नियुक्तियाँ दी गईं और उनकी नियुक्ति में अनुचितता का कोई आरोप नहीं है जिसे दागी या किसी भाई-भतीजावाद के परिणामस्वरूप कहा जा सके। बिहार या झारखंड राज्य सरकार की गलती से प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को, जो अपने जीवन में अच्छी तरह से स्थापित हो चुके हैं, बेरोजगार बनाकर बाहर फेंकना उचित नहीं होगा क्योंकि यह भेदभाव और उनकी आजीविका से वंचित करने का स्पष्ट मामला होगा। इसके अलावा, उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने सही माना है कि झारखंड राज्य सरकार का यह कर्तव्य है कि वह प्रत्यर्थी कर्मचारियों के दावे पर विचार करे, ताकि उनके पदों पर तदर्थ/अस्थायी कर्मचारियों को एक बार नियमित किया जा सके। इसके अलावा, विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा यह तर्क दिया गया है कि समान स्थिति वाले कर्मचारी बिहार राज्य सरकार में सेवा में बने हुए हैं।, इसलिए, प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण द्वारा सेवा में बने रहने के लिए मांगी गई अनुतोष स्पष्ट रूप से उनके रास्ते में आने वाली सभी बाधाओं का ख्याल रखती है। उच्च न्यायालय की खंडपीठ की सुविचारित राय है कि कर्मचारियों की सेवाओं को नियमित किया जाना चाहिए था, लेकिन दूसरी ओर,

अपीलकर्ता-राज्य सरकार ने लेटर्स पेटेंट अपील के लंबित रहने के दौरान उनकी सेवाओं को बर्खास्त कर दिया है। यह इसके लिए बाधा नहीं बन सकता है और यह प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के पक्ष में अनुतोष देने के लिए अपीलकर्ता-राज्य सरकार के रास्ते में नहीं आना चाहिए । अंत में, यह प्रस्तुत किया गया है कि एक तरफ सीधी भर्ती द्वारा रिक्त पद को भरने और उमादेवी के मामले (सुप्रा) के फैसले को लागू करके मौजूदा कर्मचारियों का उनके पदों पर "नियमितीकरण" किया जाएगा, जिन्होंने किसी भी अदालत द्वारा दिए गए अंतरिम आदेशों के हस्तक्षेप के बिना अपीलकर्तागण के साथ पदों पर 10 वर्षों से अधिक समय तक सेवा की है, के बीच महत्वपूर्ण अंतर है । इसके अलावा, उनका आग्रह है कि जो सिद्धांत भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और 21 के अधिदेश से उत्पन्न होती है, वह उमादेवी के मामले (सुप्रा) के अनुच्छेद 53 में समर्थित है। आगे यह भी तर्क दिया गया है कि यह "नियुक्ति" का मामला नहीं है जैसा कि यहां बताया गया है, बल्कि यह "नियमितीकरण" का मामला है। कर्मचारीगण के लिए एकमात्र योग्यता 10 वर्षों की अवधि के लिए अदालत के आदेश के हस्तक्षेप के बिना कर्मचारियों की निरंतर सेवा है। एक बार ऐसा हो जाने पर, अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत नागरिक की आजीविका का अधिकार और साथ ही उचित व्यवहार और अपीलकर्तागण की मनमानी कार्रवाई के खिलाफ उसका अधिकार भारत के संविधान के

अनुच्छेद 14 द्वारा संरक्षित है। यह उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के आक्षेपित फैसले के अनुरूप है। आक्षेपित फैसले में मामले के इस पहलू पर उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दर्ज निष्कर्ष और परिणाम को निश्चित रूप से इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले द्वारा ***ओल्गा टेलिस और अन्य बनाम बॉम्बे नगर निगम और अन्य*** (1985) 3 scc 545 के मामले में पूरी तरह से कवर किए गए हैं। इसके प्रासंगिक पैरा को फैसले के तर्क वाले हिस्से में उद्घृत किया जाएगा। इसलिए, विद्वान वरिष्ठ वकील ने अपीलों को खारिज करने की प्रार्थना की है।

17. संबंधित सिविल अपील में प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की ओर से पेश होने वाले अन्य सभी विद्वान वकीलों ने सिविल अपील @ एसएलपी (सी) संख्या 266, 2012 में प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की ओर से विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा की गई प्रस्तुति का समर्थन किया है। उपरोक्त दलीलों के मद्देनजर, प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के विद्वान वकील ने इस न्यायालय से सिविल अपीलों को खारिज करने का अनुरोध किया।

18. पक्षों की ओर से दिए उपरोक्त प्रतिद्वंद्वी कानूनी दलीलों के संदर्भ में, इन सिविल अपीलों में निम्नलिखित बिंदु विचार के लिए उत्पन्न होंगे : -

(1) क्या आक्षेपित निर्णय यह मानने में सही है कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण उमादेवी के मामले (सुप्रा) के लाभ के हकदार हैं क्योंकि उन्होंने अदालत के हस्तक्षेप के

बिना झारखंड राज्य सरकार में 10 साल से अधिक की सेवा प्रदान की है?

(2) क्या उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा पारित निर्णय गलत निष्कर्ष के कारण दूषित है या कानून में त्रुटि से ग्रस्त है?

(3) क्या आक्षेपित निर्णय इन अपीलों में आग्रह किए गए आधारों पर भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत शक्ति के प्रयोग में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की गारंटी देता है?

(4) आदेश?

बिंदु संख्या 1 और 2 का उत्तर:

इन बिंदुओं का उत्तर एक साथ दिया जा रहा है क्योंकि वे एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।

19. अपीलकर्तागण की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय के बार-बार निष्कर्ष आए हैं कि प्रत्यर्थीगण को नियोक्ता द्वारा स्वेच्छा से 10 वर्षों से अधिक समय तक सेवा में जारी रखा गया है। इसकी सत्यता पर अपीलकर्तागण के विद्वान वरिष्ठ वकील ने विवाद किया है जिन्होंने उच्च न्यायालय द्वारा पारित कम से कम छह अंतरिम आदेशों को प्रस्तुत किया है, जो सभी 10-4-2006 से पहले के हैं।

इन आदेशों की तारीखें इस प्रकार हैं:

(i) सीडब्ल्यूजेसी क्रमांक 9420 / 1996 में पारित आदेश दिनांकित 15-12-1996- परम कुमार बनाम बिहार राज्य

(ii) सीडब्लूजेसी संख्या 11761/1996 में पारित आदेश दिनांकित 20-6-1997 - सरदार प्रदीप सिंह बनाम बिहार राज्य।

(iii) सीडब्ल्यूजेसी क्रमांक 2606 / 2002 में पारित आदेश दिनांकित 4-4-2002 - जवाहर प्रसाद भगत बनाम बिहार राज्य।

(iv) सीडब्ल्यूजेसी क्रमांक 4327 / 2002 में पारित आदेश दिनांकित 4-4-2002 -अखिलेश प्रसाद बनाम बिहार राज्य।

(v) सीडब्ल्यूजेसी क्रमांक 4365 / 2002 में पारित आदेश दिनांकित 4-4-2002- विजय कुमार शर्मा बनाम बिहार राज्य।

(vi) सीडब्ल्यूजेसी संख्या 2087/ 2010 में पारित आदेश दिनांकित 8-1-2003।

इसके अलावा, दिनांकित 10-4-2006 के बाद उच्च न्यायालय द्वारा दो स्थगन आदेश भी पारित किए गए हैं।

जो हैं (1) विद्वान एकल न्यायाधीश का आदेश दिनांकित 9-9-2007 और (2) आदेश दिनांकित 13-9-2011

इसके अलावा, उमा देवी (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय की संविधान पीठ द्वारा यह माना गया है कि:

"53. एक पहलू को स्पष्ट करने की जरूरत है। ऐसे मामले हो सकते हैं जहां अनियमित नियुक्तियां (अवैध नियुक्तियां नहीं) जैसा कि एस बनाम नारायणप्पा (सुप्रा), आर.एन.नंजुंदप्पा (सुप्रा), और बी.एन.नागराजन (सुप्रा) में बताया गया है और उपरोक्त पैराग्राफ 15 में उल्लिखित, विधिवत स्वीकृत रिक्त पदों पर विधिवत योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति की गई होगी और कर्मचारी दस साल या उससे अधिक समय से काम कर रहे हैं लेकिन अदालतों या न्यायाधिकरणों के आदेशों के हस्तक्षेप के बिना। ऐसे कर्मचारियों की सेवाओं के नियमितीकरण के प्रश्न पर इस न्यायालय द्वारा उपरोक्त संदर्भित मामलों में तय किए गए सिद्धांतों और इस निर्णय के आलोक में गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना चाहिए। उस संदर्भ में, भारत संघ, राज्य सरकारों और उनकी संस्थाओं को अनियमित रूप से नियुक्त ऐसे लोगों की सेवाओं को एकमुश्त उपाय के रूप में नियमित करने के लिए कदम उठाने चाहिए, जिन्होंने विधिवत स्वीकृत पदों पर दस साल या उससे अधिक समय तक काम किया है। लेकिन अदालतों या न्यायाधिकरणों के आदेशों की आड़ में नहीं और आगे यह सुनिश्चित करना चाहिए कि उन रिक्त स्वीकृत पदों को भरने के लिए नियमित भर्तियां की जाएं, जिन्हें

भरने की आवश्यकता है, ऐसे मामलों में जहां अस्थायी कर्मचारी या दैनिक वेतन भोगी कार्यरत हैं, इस तिथि से छह महीने के भीतर प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए। हम यह भी स्पष्ट करते हैं कि नियमितीकरण, यदि कोई पहले से ही किया गया है, लेकिन विचाराधीन नहीं है, तो उसे इस निर्णय के आधार पर फिर से खोलने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन संवैधानिक आवश्यकता को और अधिक दरकिनार नहीं किया जाना चाहिए और संवैधानिक योजना के अनुसार विधिवत नियुक्त नहीं किए गए लोगों को नियमित या स्थायी किया जाना चाहिए।

(इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

अपीलकर्तागण के विद्वान वरिष्ठ वकील ने निर्णय के उपरोक्त पैराग्राफ पर भरोसा करते हुए कहा कि प्रत्यर्थी 10 साल की निर्बाध सेवा की आवश्यकता को पूरा नहीं करते हैं जो उनके पदों पर कर्मचारियों की सेवाओं के नियमितीकरण के लिए अनिवार्य है। इसलिए, उपरोक्त मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनी सिद्धांत वर्तमान मामले में लागू नहीं हो सकता है, इसलिए, प्रत्यर्थी नियमितीकरण के हकदार नहीं हैं।

20. हमने दोनों पक्षों के विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा आग्रह किए गए तथ्यात्मक और कानूनी तर्कों को सुना है और प्रत्यर्थी कर्मचारियों की

ओर से प्रस्तुत साक्ष्य के संदर्भ में आक्षेपित निर्णय में दर्ज निष्कर्षों और कारणों की सावधानीपूर्वक जांच की है। प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण द्वारा प्रस्तुत रिकॉर्ड पर साक्ष्य स्पष्ट रूप से दर्शाते हैं कि वे 1987 से तदर्थ इंजीनियरों के रूप में पदों पर सेवाएं प्रदान कर रहे हैं। और अपीलकर्तागण के साथ स्थायी कर्मचारी के रूप में अपनी सेवाओं का निर्वहन कर रहे हैं। इसके बाद बिहार राज्य सरकार द्वारा अतिरिक्त 200 पद सृजित किये गये। हालाँकि, प्रत्यर्थीगण ने बिना किसी अनुशासनात्मक कार्यवाही के तदर्थ कर्मचारियों के रूप में अपनी सेवाएँ जारी रखीं, जो साबित करता है कि वे अपने नियोक्ताओं को उनकी संतुष्टि के अनुसार सेवाएँ दे रहे हैं।

अपीलकर्तागण की ओर से विद्वान वरिष्ठ वकील यह दिखाने में विफल रहे हैं कि जिन अंतरिम आदेशों पर उन्होंने मजबूत भरोसा जताया था, वे प्रत्यर्थीगण पर कैसे लागु किये गए जो उपलब्ध नहीं है, अलावा अमृत लाल बेरी (सुप्रा) के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर भरोसा करने के , इस तर्क को पुष्ट करने के लिए बिहार और झारखंड दोनों राज्य सरकारों की ओर से कोई रिकॉर्ड प्रस्तुत किए बिना कि उपरोक्त रिट याचिकाओं में समान रूप से रखे गए कर्मचारियों द्वारा प्राप्त अंतरिम आदेशों को समानता बनाए रखने के लिए प्रत्यर्थी कर्मचारियों पर लागु किया गया था , हालांकि उन्हें हाई कोर्ट से ऐसे कोई अंतरिम आदेश नहीं मिले हैं। इसलिए, विद्वान वरिष्ठ वकील यह साबित करने में विफल रहे हैं कि प्रत्यर्थीगण

अदालत के आदेशों के हस्तक्षेप के बिना कम से कम दस वर्षों तक अपीलकर्तागण को निरंतर सेवाएं प्रदान करने में विफल रहे हैं। उच्च न्यायालय की खंडपीठ द्वारा दर्ज तथ्य के निष्कर्ष रिकॉर्ड पर आधारित हैं, इसलिए इसे कानून में गलत नहीं कहा जा सकता। प्रासंगिक विवादास्पद मुद्दे पर तथ्य की स्पष्ट खोज के मद्देनजर कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण लगातार 10 वर्षों से अधिक समय से अपनी सेवा में बने हुए हैं , इसलिए, इस न्यायालय द्वारा उमा देवी के मामले (सुप्रा) में पैराग्राफ 53 में निर्धारित कानूनी सिद्धांत वर्तमान मामलों पर पूरी तरह से लागू होता है। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने सही माना है कि प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण अनुतोष के हकदार हैं, इसमें इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता है।

21. वास्तव में, उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच ने अपने आक्षेपित आदेश के माध्यम से प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को नियमित करके **ओल्गा टेलिस (सुप्रा)** के मामले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित संवैधानिक सिद्धांत को बरकरार रखा है, जिसका प्रासंगिक पैरा इस प्रकार है: :-

> *"32. जैसा कि हमने याचिकाकर्ताओं के मामले का सारांश देते हुए कहा है, उनके तर्क का मुख्य मुद्दा यह है कि अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत जीवन के अधिकार में आजीविका का अधिकार भी शामिल*

है। और चूंकि, यदि उन्हें उनकी झुग्गी-झोपड़ी और फुटपाथ आवासों से बेदखल कर दिया गया तो वे अपनी आजीविका से वंचित हो जाएंगे, उनका निष्कासन उनके जीवन से वंचित करने के समान है और इसलिए असंवैधानिक है। तर्क के प्रयोजनों के लिए, हम इस आधार की तथ्यात्मक सत्यता मान लेंगे कि यदि याचिकाकर्ताओं को उनके आवास से बेदखल कर दिया गया, तो वे अपनी आजीविका से वंचित हो जाएंगे। उस धारणा पर, हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है कि क्या जीवन के अधिकार में आजीविका का अधिकार भी शामिल है। हम उस प्रश्न का केवल एक ही उत्तर देखते हैं, वह यह कि ऐसा होता है। अनुच्छेद 21 द्वारा प्रदत्त जीवन के अधिकार का दायरा व्यापक और दूरगामी है। इसका मतलब केवल यह नहीं है कि कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अलावा, जीवन को बर्खास्त नहीं किया जा सकता है या नहीं लिया जा सकता है, उदाहरण के लिए, मौत की सजा देकर और निष्पादित करके। यह जीवन के अधिकार का एक पहलू है। उस अधिकार का एक समान रूप से महत्वपूर्ण पहलू आजीविका का अधिकार भी है, क्योंकि कोई भी

व्यक्ति जीवन यापन के साधन यानी आजीविका के साधनों के बिना नहीं रह सकता। यदि आजीविका के अधिकार को जीवन के संवैधानिक अधिकार का हिस्सा नहीं माना जाता है, तो किसी व्यक्ति को उसके जीवन के अधिकार से वंचित करने का सबसे आसान तरीका उसे उसकी आजीविका के साधनों से हनन की हद तक वंचित करना होगा। इस तरह का अभाव न केवल जीवन को उसकी प्रभावी सामग्री और सार्थकता से वंचित कर देगा, बल्कि जीवन को जीना असंभव बना देगा और फिर भी, यदि आजीविका के अधिकार को जीवन के अधिकार का हिस्सा नहीं माना जाता है, तो इस तरह का अभाव कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार नहीं होगा। वह, जो अकेले जीना संभव बनाता है, उस चीज़ को छोड़ दें जो जीवन को जीने योग्य बनाती है, उसे जीवन के अधिकार का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए। किसी व्यक्ति को उसकी आजीविका के अधिकार से वंचित करें और आप उसे उसके जीवन से वंचित कर देंगे। दरअसल, यह ग्रामीण आबादी के बड़े शहरों की ओर बड़े पैमाने पर प्रवास की व्याख्या करता है। वे पलायन इसलिए करते हैं क्योंकि गांवों में उनके पास आजीविका का कोई साधन

नहीं है। गांव में अपने चूल्हों और घरों को छोड़ने के लिए प्रेरित करने वाली प्रेरक शक्ति अस्तित्व के लिए संघर्ष, यानी जीवन के लिए संघर्ष है। जीवन और आजीविका के साधनों के बीच संबंध का प्रमाण इतना बेदाग है। उन्हें जीने के लिए खाना पड़ता है: केवल मुट्ठी भर लोग ही खाने के लिए जीने की विलासिता को वहन कर सकते हैं। वे ऐसा कर सकते हैं, अर्थात् खा सकते हैं, केवल तभी जब उनके पास आजीविका का साधन हो। यही वह संदर्भ है जिसमें बकसी में डगलस न्यायाधीश द्वारा कहा गया था कि काम करने का अधिकार मनुष्य के पास सबसे कीमती स्वतंत्रता है। यह सबसे कीमती स्वतंत्रता है क्योंकि, यह मनुष्य को जीवित रहने में सक्षम बनाती है और जीवन का अधिकार एक अनमोल स्वतंत्रता है। "जीवन", जैसा कि मुन्न बनाम इलिनोइस में फील्ड, न्यायाधीश द्वारा देखा गया है, का अर्थ केवल पशु अस्तित्व से कुछ अधिक है और जीवन के अभाव के खिलाफ निषेध उन सभी सीमाओं और क्षमताओं तक फैला हुआ है जिनके द्वारा जीवन का आनंद लिया जाता है। इस टिप्पणी को खड़क सिंह बनाम यूपी राज्य मामले में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदन

के साथ उद्धृत किया गया था।

(इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए जो हमने इस निर्णय में बताए हैं और आक्षेपित फैसले में उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों और कारणों को बरकरार रखने में, यह नहीं कहा जा सकता है कि उच्च न्यायालय द्वारा अपने विचारार्थ उठाए गए विवादास्पद मुद्दों पर निष्कर्ष तक पहुंचने में दर्ज किए गए निष्कर्षों और कारणों को या तो गलत या कानून में त्रुटि कहा जा सकता है।

22. उपरोक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, हम यह निष्कर्ष निकालने के इच्छुक हैं कि उमा देवी के मामले का लाभ प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को देने में उच्च न्यायालय कानूनी रूप से सही था। इसलिए, हम प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के पक्ष में बिंदु संख्या 1 और 2 का उत्तर देते हैं।

बिंदु संख्या 3 का उत्तर

23. यद्यपि बिन्दु क्रमांक 1 एवं 2 का उत्तर प्रत्यर्थीगण के पक्ष में दिया गया है। भारत के संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप की आवश्यकता के संबंध में उठाए गए

प्रश्न पर हमारे द्वारा अलग और स्वतंत्र विचार की आवश्यकता है। ***जमशेद होर्मूसजी वाडिया बनाम न्यासी बोर्ड, मुंबई बंदरगाह और अन्य*** 2004 **3 SCC 214** के मामले में, इस न्यायालय ने निम्नानुसार कहा:

> **"33.** सर्वोच्च न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति इस अर्थ में पूर्ण है कि अनुच्छेद 136 में ही उस शक्ति को प्रमाणित करने वाला कोई शब्द नहीं है। विवेकाधीन शक्ति प्रदान करना ही ऐसी शक्ति की विस्तृत परिभाषा के किसी भी प्रयास को अस्वीकार करता है। इस शक्ति का प्रयोग नियमित रूप से नहीं बल्कि असाधारण परिस्थितियों में करने की अनुमति है, जैसे कि जब सामान्य सार्वजनिक महत्व के कानून का कोई प्रश्न उठता है या सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष किसी निर्णय को चुनौती देने की मांग की जाती है, तो अंतरात्मा को झटका लगता है। इस सर्वोपरि और असाधारण शक्ति को सुप्रीम कोर्ट में निहित किया गया है, जिसका प्रयोग संयमित ढंग से और केवल असाधारण मामलों में सुप्रीम कोर्ट में न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए किया जा सकता है, जब विशेष परिस्थितियाँ मौजूद हों।

(इस न्यायालय द्वारा जोर दिया गया)

इस स्थिति की **मथाई @ जॉबी बनाम जॉर्ज और अन्य 2010 4 SCC 358** के मामले में फिर से पुष्टि की गई और इसे और स्पष्ट किया गया, जिसमें इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की पीठ ने इस प्रकार कहा:

> *"21. श्री वेणुगोपाल ने मामलों की निम्नलिखित श्रेणियों का सुझाव दिया है जिन पर संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत विचार किया जाना चाहिए।*
>
> *(i) भारत के संविधान की व्याख्या से संबंधित कानून के महत्वपूर्ण प्रश्नों से जुड़े सभी मामले;*
>
> *(ii) राष्ट्रीय या सार्वजनिक महत्व के सभी मामले;*
>
> *(iii) कानूनों की वैधता, केंद्र और राज्य;*
>
> *(iv) केशवानंद भारती के बाद, (1973) 4 एससीसी 217, संवैधानिक संशोधनों की न्यायिक समीक्षा; और*
>
> *(v) उच्च न्यायालयों के बीच कानून के महत्वपूर्ण मुद्दों पर मतभेदों को सुलझाना।*

22. हमारी राय है कि उपरोक्त सूची में मामलों की दो अतिरिक्त श्रेणियां जोड़ी जा सकती हैं (i) जहां न्यायालय संतुष्ट है कि **न्याय की हत्या हुआ** है और (ii) जहां प्रथम दृष्टया किसी व्यक्ति के

मौलिक अधिकार का उल्लंघन हुआ हो। हालाँकि, यह संविधान पीठ पर निर्भर करता है जिसके पास हम इस मामले को भेज रहे हैं ताकि यह तय किया जा सके कि किस प्रकार के मामले हैं जिनमें अनुच्छेद 136 के तहत विवेक का प्रयोग किया जाना चाहिए।

23. हमारी राय में, अब समय आ गया है जब संविधान पीठ के एक आधिकारिक निर्णय में कुछ व्यापक दिशानिर्देश दिए जाने चाहिए कि संविधान के अनुच्छेद 136 के तहत विवेक का प्रयोग कब किया जाना चाहिए यानी किस तरह के मामले में अनुच्छेद 136 के तहत याचिका को स्वीकार किया जाना चाहिए। यदि किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण द्वारा पारित सभी और विविध प्रकार के आदेशों के विरुद्ध विशेष अनुमति याचिकाओं पर विचार किया जाता है, तो कुछ समय के बाद यह न्यायालय अपने ही बोझ से ढह जाएगा।

24. यह उल्लेख किया जा सकता है कि **प्रीतम सिंह बनाम राज्य एआईआर 1950 एससी 169** मामले में इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने विवेचन किया (पैरा 9 के अनुसार) कि "विशेष अवकाश देने में कमोबेश एक समान मानक अपनाया जाना चाहिए"। दुर्भाग्य से, इस अवलोकन के बावजूद इस न्यायालय द्वारा ऐसा कोई समान मानक निर्धारित नहीं किया गया है, जिसके परिणामस्वरूप विशेष अनुमति देना, जैसा कि श्री सीतलवाड ने अपनी पुस्तक 'माई

लाइफ' में बताया है, एक जुआ बन गया है। यह कोई वांछनीय स्थिति नहीं है क्योंकि इस न्यायालय की विभिन्न पीठों के दृष्टिकोण में कुछ एकरूपता होनी चाहिए। हालांकि अनुच्छेद 136 निस्संदेह न्यायालय को विवेकाधिकार प्रदान करता है, न्यायिक विवेक, जैसा कि लॉर्ड मैन्सफील्ड ने जॉन विल्क्स (1770) 4 बूर 2528 के मामले में क्लासिक शब्दों में कहा था, "इसका अर्थ है कानून द्वारा निर्देशित ध्वनि विवेक। इसे नियम द्वारा नियंत्रित किया जाना चाहिए, हास्य से नहीं: यह मनमाना, अस्पष्ट और काल्पनिक नहीं होना चाहिए"

उपरोक्त निर्णयों में निर्धारित कानूनी सिद्धांतों के मद्देनजर, हमारी राय है कि उच्च न्यायालय का निर्णय ऊपर उल्लिखित किसी भी श्रेणी में नहीं आता है जिसमें हमारे हस्तक्षेप की आवश्यकता है। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने स्पष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कहा कि प्रत्यर्थी कर्मचारियों ने स्थायी प्रकृति के कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए 29 वर्षों से अधिक समय तक अपने पदों पर लगातार काम किया है और उन्हें बजट आवंटन से उनके वेतन और अन्य सेवा लाभों का भुगतान किया गया है, इस संबंध में सीएजी द्वारा कोई आपत्ति नहीं उठाई गई थी और इसलिए, अपीलकर्तागण के लिए यह तर्क देना सही नहीं है कि उमा देवी के मामले (सुप्रा) में निर्धारित कानून का तथ्य का इस मामले पर कोई अनुप्रयोग नहीं है। लेटर्स पेटेंट अपील के लंबित रहने के दौरान अपने पदों पर निरंतर

सेवा प्रदान करने वाले प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण की सेवाओं को बर्खास्त करने में अपीलकर्तागण की कार्रवाई को उच्च न्यायालय ने यह महसूस करने के बाद रद्द कर दिया था कि यह कार्रवाई न केवल मनमानी है, बल्कि इसकी चेतना को झकझोर देने वाली है। और इसलिए इसने अपनी विवेकाधीन शक्ति का सही प्रयोग किया है और प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को अनुतोष दी है जिसमें हमारे हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसलिए, हमारी राय है कि यह न्यायालय उच्च न्यायालय की राय में हस्तक्षेप नहीं करेगा और इसके विपरीत, हम तथ्यात्मक और कानूनी दोनों पहलुओं पर उच्च न्यायालय के फैसले को बरकरार रखेंगे क्योंकि यह कानूनी रूप से सही है और उसने प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण के साथ न्याय किया है। ।

बिंदु संख्या 4 का उत्तर

24. जैसा कि पहले ही ऊपर बताया जा चुका है, हमारी राय है कि उमादेवी के मामले (सुप्रा) में संविधान पीठ के फैसले में इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानूनी सिद्धांतों पर भरोसा करके उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी-कर्मचारीगण को अपीलकर्तागण के अधीन उनकी सेवाओं में बहाल करने में सही किया था। तदनुसार, हम अपीलकर्तागण को उच्च न्यायालय की डिवीजन बेंच के आदेशों को लागू करने का निर्देश देते हैं, जिससे प्रत्यर्थीगण को उनकी सेवाएं जारी रहेंगी और सभी लाभ मिलेंगे, जैसा कि उसके द्वारा आक्षेपित निर्णय में दिया गया है।

25. तदनुसार सिविल अपीलें खारिज की जाती हैं।

[ज्ञान सुधा मिश्रा] न्यायमूर्ति

वि गोपाल गौड़ा] न्यायमूर्ति

नई दिल्ली,

23 अप्रैल 2014

यह अनुवाद पीयूष आनन्द, पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया है।